इकाई 5 विकास के मुद्दे

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 विकास का संक्षिप्त इतिहास

5.3 दीर्घकालीन विकास की अवधारणा

5.4 अफ्रीका में विकास

5.5 अफ्रीका में विकास का इतिहास

5.6 अफ्रीका में भयावह संकट

5.7 संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम और विकास

5.8 शासन और विकास

5.9 भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण) और विकास

5.10 पर्यावरण और विकास

5.11 दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास की ओर

5.12 सारांश

5.13 अभ्यास

5.1 प्रस्तावना

अन्य सभी अवधारणाओं की तरह विकास के भी, समाज विज्ञान के विभिन्न विषयों के संदर्भ में विभिन्न अर्थ लिए जाते हैं। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो इसके द्वारा 'लोगों के जीवन स्तर में सुधार' का अभिप्राय प्रकट होता है। इससे पहले कि हम अफ्रीका के विकास संबंधी मुद्दों पर विचार करें, विकास के विषय में बदलते हुए बोध पर संक्षेप में दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा।

5.2 विकास का संक्षिप्त इतिहास

विकास का अध्ययन एक नई घटना है। 1960 के दशक का प्रथम संयुक्त राष्ट्र विकास दशक, आशावादिता तथा आर्थिक सहयोग के लिए जाना गया था। यह आशावादिता, इस यथार्थरहित धारणा पर आधारित थी कि अल्पविकसित देशों की विकास संबंधी समस्याएँ, विकसित देशों के वित्त, प्रौद्योगिकी और अनुभव को उन्हें प्रदान कर देने पर तेज़ी से हल हो सकेंगी। यह वह समय था जब विकास, आर्थिक समृद्धि का पर्याय बन चुका था। तर्क यह दिया जाता था कि आर्थिक समृद्धि ने ही विकसित देशों को उनकी तत्कालीन लाभप्रद स्थिति में पहुँचाया था।

किन्तु 1970 के दशक (द्वितीय संयुक्त राष्ट्र विकास दशक) में विश्व में गरीबी और समानता की वृद्धि के कारण (पूर्व) आशावादिता धुँधली पड़ गई। सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product – GNP) के पैमाने पर अनेक विकासशील देशों ने आर्थिक समृद्धि प्राप्त कर ली थी किन्तु उस 'विकास' का लाभ उन राष्ट्रों के लोगों को समान भागीदारी के रूप में प्राप्त नहीं हो पाया था। 1970 के दशक में भागीदारी एवं सहयोग संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के कारण 1976 की प्रारंभिक मंदी भी घटी थी

किन्तु इस तथ्य के स्पष्ट होने पर कि अल्प विकास, गरीबी, भूख और निरक्षरता के निराकरण में लंबा समय लगेगा, विकसित देशों को अपने 'विकास हेतु सहयोग' कार्यक्रम पर पुनर्विचार हेतु बाध्य कर दिया।

1980 के दशक के तृतीय संयुक्त राष्ट्र विकास दशक में विकास के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का आविर्भाव दुबारा हुआ। पिछले दो दशकों के अनुभव के आधार पर पूरे विश्व में विकास के ढाँचे की एक बेहतर समझ उभरी। यह समझ मूलभूत प्रक्रियाओं के तर्कसंगत विश्लेषण पर आधारित थी जिसके कारण संबद्ध ढाँचों और वैकल्पिक कार्यनीतियों का जन्म हुआ। इस बोध के साथ कि विश्व-भर के सभी भागों में विकास की संभावनाएँ, एक-दूसरे से जुड़ी थीं; जन समुदाय की आय, साक्षरता, स्वास्थ्य आदि के स्तरों में सुधार जैसे वितरण संबंधी मुद्दों को विकास की कार्यनीति के आधारभूत भागों के रूप में स्वीकार किया गया था। 'समानता के साथ समृद्धि' या 'समृद्धि के साथ पुनर्वितरण' जैसी अवधारणाओं का आर्विभाव 1970 के दशक में हुआ था। इन अवधारणाओं ने इस विश्वास को सुदृढ़ किया कि आर्थिक समृद्धि की अभिवृद्धि ही विकास का आधारभूत मानदंड है।

1980 के दशक में विकास को ऐसी बहुआयामी अवधारणा के रूप में देखा जाता था जिसमें समाज के सभी लोगों के सामाजिक एवं भौतिक हितों के व्यापक सुधारों को समाहित किया गया हो। यह भी मान लिया गया था कि विकास प्राप्त करने के लिए कोई एक प्रतिरूप नहीं था और सभी क्षेत्रों में किए गए निवेशों का महत्त्व एकसमान ही था। उसमें न केवल आर्थिक एवं सामाजिक ही वरन् जनसंख्या, प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं पर्यावरण पर उनके प्रभाव से संबंधित गतिविधियाँ भी शामिल होनी चाहिए थीं। 1980 के दशक के बाद के वर्षों में ही मानवीय विकास को, विकास की संपूर्ण चर्चा में केन्द्रीय स्थान प्राप्त हुआ था। 1990 के दशक के प्रारंभिक काल में विकास के सभी पक्षों में अन्योन्याश्रितता एक यथार्थ के रूप में स्थापित हो चुकी थी।

5.3 दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास की अवधारणा

सन् 1984 में संयुक्त राष्ट्र ने अपने विकसित एवं विकासशील, दोनों प्रकार के सदस्य राज्यों से 22 लोगों को चुनकर एक स्वतंत्र आयोग का गठन किया जिसे विश्व के लिए पर्यावरण एवं विकास से संबंधित सभी दीर्घकालीन कार्यनीतियों को पहचानना था। सन् 1987 में विश्व-पर्यावरण एवं विकास आयोग (World Commission on Environment and Development – WCED) ने (जिसे ब्रुटलैण्ड आयोग भी कहा जाता है) "सर्व-सामान्य प्रयत्न तथा सभी स्तरों पर सभी के हित के लिए व्यवहार के नए मानकों" की अंतिम रूपरेखा का प्रारूप तैयार किया। *'हमारा सर्व-सामान्य भविष्य* (Our Common Future, WCED 1987)' के नाम से प्रकाशित इस प्रतिवेदन में आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों पर वैश्विक सहयोग एवं विभिन्न देशों के बीच पारस्परिक समर्थन के कार्यों को केन्द्र में रखा गया था। आयोग ने प्राकृतिक संसाधनों की व्यापक क्षति पर प्रकाश डाला किन्तु यह आशा भी प्रकट की कि वैश्विक प्रतिबद्धता तथा समन्वय के द्वारा मानव जाति के लिए एक अधिक समृद्ध, न्यायसंगत और सुरक्षित भविष्य संभव बनाया जा सकता है।

दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास को ब्रुटलैण्ड आयोग ने इस प्रकार परिभाषित किया है - "वह विकास, जो भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकता पूर्ति से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकता को पूर्ण करता हो।" विश्व-पर्यावरण एवं विकास आयोग द्वारा दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास की परिभाषा के अनुसार उसके मुख्य मुद्दों तथा आवश्यक प्रतिबंधों को सारांश रूप में इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:

मुख्य मुद्दे

जनसंख्या और विकास

खाद्य-संरक्षण

पर्यावरण

ऊर्जा

उद्योग

शहरी चुनौती

दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास की खोज के लिए आवश्यक है :

एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली जो निर्णय प्रक्रिया में नागरिक की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करती हो।

एक ऐसी आर्थिक प्रणाली जो असामंजस्यपूर्ण विकास के कारण उठ खड़े हुए झगड़ों का समाधान प्रदान करती हो।

एक ऐसी उत्पादन प्रणाली जो विकास हेतु पारिस्थितिकीय आधार के संरक्षण की अनिवार्यता का सम्मान करती हो।

एक ऐसी तकनीकी प्रणाली जो व्यापार और वित्त प्रबंधन के दीर्घकालीन (टिकाऊ) ढाँचे का पोषण करती हो।

एक ऐसी प्रशासनिक प्रणाली जो आत्म-संशोधन में समर्थ हो।

5.4 अफ्रीका में विकास

अफ्रीका में द्वितीय विश्वयुद्ध से लेकर आज तक का समय आर्थिक संकट, राजनीतिक अव्यवस्था, गृहयुद्ध, भुखमरी, पर्यावरण-विनाश, महामारियों तथा दुर्दशा के साथ संघर्ष से भरा हुआ रहा है। किसी भी पैमाने से नापा जाए, अफ्रीका में गरीबी और मानवीय पीड़ा असह्य रूप से विद्यमान रही है। संपूर्ण क्षेत्र कमज़ोर अवसंरचना, सीमित प्रौद्योगिकी, कमजोर संस्थाओं तथा स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी जर्जर सेवाओं से ग्रस्त है। इसमें संदेह नहीं कि अफ्रीका का उपर्युक्त शब्दचित्र उस क्षेत्र की कटोर वास्तविकताओं से साक्षात्कार कराता है। किन्तु अन्य प्रत्यक्ष जानकारियों की भाँति यह भी अतिशयोक्तिपूर्ण, तोड़ा-मरोड़ा हुआ और सरलीकृत लगता है। इस महाद्वीप के सभी भाग उतनी निराशाजनक स्थिति में नहीं हैं जैसा इस क्षेत्र पर लिखित साहित्य से ध्वनित होता है। कुछ क्षेत्रों (जैसे घाना, नाइजीरिया तथा युगाण्डा) में यदा-कदा महत्त्वपूर्ण प्रगति के समाचार मिलते रहते हैं। अतः आने वाले वर्षों में अफ्रीका की संभावनाओं के संबंध में संतुलित एवं यथार्थपरक दृष्टिकोण रखना महत्त्वपूर्ण होगा। इस प्रकार का दृष्टिकोण अतीत के तर्कसंगत मूल्यांकन, बदलते हुए वैश्विक पर्यावरण तथा सामाजिक-आर्थिक पुनरुत्थान पर आधारित होना चाहिए और उसी के अनुरूप प्रगति को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

इसे नकारा नहीं जा सकता कि अफ्रीका में अनिश्चितता एवं निराशा का वातावरण व्याप्त है। अनेक राज्य ढेर हो चुके हैं तथा निकट भविष्य में अन्य अनेक समाप्ति के कगार पर पहुँचने वाले हैं। फिर

भी सोमालिया, रवाण्डा एवं लाइबेरिया में हुए जाति-संहार तथा नाइजीरिया, कांगो एवं सूडान में हुई सामाजिक-राजनीतिक अशान्ति, अफ्रीका में आयोजित युद्ध के अनेक रंग स्थलों एवं मानवीय सर्वनाशों में से कुछेक के उदाहरण हैं। इसी परिदृश्य में अफ्रीकी संकटों - जो वस्तुतः विकास के संकट ही हैं - के सहिष्णुतापूर्ण एवं व्यावहारिक हल की आवश्यकता है।

हम पहले ही विकास तथा दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास के अर्थों एवं उनके इतिहास पर संक्षेप में विचार कर चुके हैं। यह सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि इनमें कुछ सूचियाँ सामान्य हैं जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित है कि राष्ट्र-स्तर एवं राज्य-स्तर पर विकास प्रायः "लोगों के रहन-सहन में सुधार" को प्रकट करता है। यह सुधार विविध किन्तु पारम्परिक पूरक रूपों में होना चाहिए। राजनीतिक स्तर पर इसमें लोगों को अपनी नियति निर्धारित करने तथा सरकार को अपना दायित्व तय करने के लिए भागीदारी करनी आवश्यक होती है। यहाँ आर्थिक विकास का अर्थ है - 'लोगों का अपनी भौतिक आवश्यकताओं को उपयुक्त रूप से पूर्ण करने के लिए समर्थ होना।' अन्य बातों के अलावा, सामाजिक स्तर पर विकास के अंतर्गत 'दूसरों के विचारों तथा सामाजिक मानकों के प्रति सम्मान' सम्मिलित होता है।

इस धारणा के अनुरूप गृहीत विकास को 'आर्थिक समृद्धि' का पर्याय नहीं समझा जाना चाहिए। जहाँ आर्थिक समृद्धि प्रायः प्रति व्यक्ति आय के रूप में आर्थिक उत्पादन में वृद्धि को प्रकट करती है और उसमें यह प्रकट नहीं होता कि समाज के लाभों और देनदारियों (परिमाणात्मक वृद्धि) का वितरण किस प्रकार किया जाता है, वहीं यथार्थ विकास का अभिप्रायः होता है 'लोगों की असमानता में गुणात्मक वृद्धि या ह्रास'; उनमें कम से कम की उपेक्षा तथा अधिक से अधिक लोकतांत्रिक राजनीतिक शासन प्रणाली का समावेश। अतः क्लॉडे एके (Claude Ake) के मतानुसार विकास का अर्थ हुआ, 'लोगों द्वारा अपने लाभ के लिए, अपने संसाधनों द्वारा तथा अपने ही द्वारा निर्धारित मानकों का पीछा करना।'

5.5 अफ्रीका में विकास का इतिहास

अफ्रीका में विकास के वर्तमान संकटों के निर्धारण में अनेक आन्तरिक एवं बाह्य कारक सम्मिलित हैं। बाह्य कारकों में अपने सभी अमानवीय प्रभावों से युक्त दास व्यापार शामिल है। करोड़ों हृष्ट-पुष्ट युवा महाद्वीप से बाहर भेज दिए गए जिससे यहाँ की जनसंख्या में रिक्तता आई। इसका दुष्प्रभाव अफ्रीका को अब भी कौंचता है क्योंकि जो लोग बाहर ले जाए गए वे सभी सक्रिय मज़दूर थे। इसकी भारी क्षति वहाँ की कृषि तथा अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों को उठानी पड़ी। दूसरे, 'मनुष्य के शिकार' की अमानवीयता से भरी चार शताब्दियों ने पारस्परिक अविश्वास, हिंसा तथा सामाजिक विघटन को बढ़ावा दिया। अतः भारी जनसंख्या रिक्तता, मज़दूरों के (बलात्) पलायन, अन्तरा-राष्ट्रीय (intra-national) एवं अन्तरराष्ट्रीय (inter-national) संबंधों के पूर्ण विखंडन के कारण अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही विकास अक्षरशः अर्थों में आधा रह गया था। दास व्यापार के तुरन्त बाद उपनिवेशवाद का पदार्पण हुआ और छद्म रूप से किन्तु पूर्व युग की ही भाँति विकास को छिन्न-भिन्न करने वाली लूट-खसोट अफ्रीका में चलती ही रही। अफ्रीका की अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन इस प्रकार किया गया जिससे औपनिवेशिक शक्तियों के हितों का साधन हो। इस आर्थिक-व्यवस्था के अनेक रूप थे। इसके कारण खेती की व्यवस्था बिगड़ गई क्योंकि कोकोआ, कहवा, मूँगफली आदि नकदी की फसलों को प्रोत्साहित करने के लिए जान-बूझकर खाद्यान्न की फसलों की उपेक्षा की गई।

5.6 अफ्रीका में भयावह संकट

1970 के दशक के परवर्ती वर्षों में गतिहीनता और क्षय का प्रारंभ हुआ उसमें अधिक से अधिक अफ्रीकी देश फँसते चले गए। इसी दशक के प्रारंभ में साहिल तथा अफ्रीका के हॉर्न क्षेत्र में जो भयंकर सूखा पड़ा उसके बाद अफ्रीका संकटों से घिरा महाद्वीप बनकर रह गया। इस कथन को प्रभावित करने वाले आँकड़े अपनी कहानी स्वयं कहते हैं। संसार के 47 अल्पतम विकसित राष्ट्रों में से 32 अफ्रीका में हैं। शिशु एवं बाल मृत्यु-दरें इस तथ्य के प्रमाण हैं। (महाद्वीप में प्रतिदिन 1000 बच्चे, दस्त तथा हैज़ा जैसी बीमारियों से काल के ग्रास बन जाते हैं।) वे (अफ्रीकी राष्ट्र) सूखों, युद्धों, भ्रष्ट एवं दमनकारी सरकारों जैसी समस्याओं से तो उजड़ते ही रहे, एड्स जैसी महामारी ने रही बची कसर पूरी कर दी। यह तथ्य आँखें खोलने वाला है कि बीसवीं शताब्दी के अंत तक अफ्रीका में 50 लाख शरणार्थी हो गए थे जो पूरे संसार में फैले शरणार्थियों की संख्या के एक-तिहाई थे। इनमें आंतरिक विद्रोहों से जलते हुए अफ्रीकी राज्यों - युगाण्डा, चाड (Chad), सूडान, मॉरटेनिया और बुरुंडी - के विस्थापित लोग शामिल नहीं हैं।

इन समस्याओं के अतिरिक्त आसमान छूते हुए ऋण की समस्या भी है जो 1982 में 72 अरब अमेरिकी डॉलर हो गया था। सन् 2000 तक यह राशि बढ़कर 300 अरब डॉलर हो गई। यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि यह राशि सन् 1962 से 2000 तक अफ्रीका के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 102 प्रतिशत थी। विश्व बैंक के सूत्रों ने इन समस्याओं के दो मुख्य कारण बताए थे। पहला, अपर्याप्त प्रशासनिक क्षमताओं के बावजूद अर्थव्यवस्था पर राज्य का अत्यधिक नियंत्रण (इसमें वित्तीय सहायता तथा ऐसी ही अन्य गतिविधियों को प्रोत्साहित करने वाले विश्व बैंक के अपने भाग को शामिल नहीं किया गया है)। दूसरा कारण है पिछले चार दशकों में हुआ जनसंख्या विस्फोट, जिसे मरुस्थल-विस्तार, पर्यावरण की अधोगति, अपर्याप्त खाद्य आपूर्ति तथा खाद्य-आयात में वृद्धि के लिए उत्तरदायी ठहराया गया है। सन् 1974 में बेसिल डेविडसन ने भविष्यवाणी की थी कि, "1990 तक प्रायः सभी अफ्रीकी या तो विदेशों से आयातित आहार ग्रहण कर रहे होंगे या नहीं के बराबर खा रहे होंगे।" यह कथन देववाणी की तरह सत्य सिद्ध हुआ है क्योंकि आज अफ्रीका में मुश्किल से ही कोई देश ऐसा बचा है जिसमें खाद्यान्न को लेकर दंगे न हुए हों। यहाँ यह जोड़ना ठीक ही लगता है कि खाद्यान्न के संरक्षण के मामले में (अ)व्यवस्थित इस महाद्वीप को या तो विश्व के दान पर जीवित रहना होगा या उस धन से विदेशी खाद्यान्न खरीदना पड़ेगा जिसका उपयोग विकास-कार्यों के लिए किया जाना चाहिए था।

नकदी फसलों का अधिक प्रचलन एक नया आयाम था। अफ्रीकी अर्थव्यवस्था पश्चिम पर आश्रित है। नकदी फसल को सरलता से संसाधित नहीं किया जा सकता, इसलिए अफ्रीकी देशों को अपनी नकदी फसलों को बेचने के लिए यूरोप में बाजार खोजने पड़ते थे। इसी कारण अफ्रीका की अर्थव्यवस्था पश्चिमी पूँजीवाद और उसके निहित अंतर्विरोधों एवं अन्यायों की सनकों से जुड़ी रही है। परिणाम यह हुआ है कि अफ्रीका का विकास पश्चिम के आदेशानुरूप स्थिति से अधिक हो ही नहीं पाया है।

5.7 संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम और विकास

संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों (Structural Adjustment Programme – SAP) के लागू होने के साथ-साथ पश्चिमी या यूरोप द्वारा आरोपित विकास में एक नया आयाम जुड़ गया। इस कार्यक्रम को सबसे पहले विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के द्वारा इस कल्पना के साथ प्रारंभ किया गया था कि इससे विश्व अर्थव्यवस्था में देशों की अधिक संबद्धता के साथ विकास को प्रोत्साहित किया जा

सकता हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के साथ विश्वसनीयता बनाने के लिए व्यापार का उदारीकरण एक माध्यम बन गया है। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसने बाजार की शक्ति तथा ऐसे साधनों पर जोर दिया है जिसमें निर्धन से निर्धन किसान भी केवल स्थानीय आर्थिक व्यवस्था का ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तंत्र का भाग माना जाता है। अर्थव्यवस्था की 'पिछड़ी' तथा 'उन्नत' कड़ियों को विकसित एवं प्रोत्साहित करने के लिए ऋण प्रदान किए जाते हैं। अर्थव्यवस्थाएँ जब विकास के प्रारंभिक चरणों में हों तथा जहाँ सक्रिय बाज़ार उपलब्ध हों, वहाँ तो यह पद्धति अच्छा कार्य करती है। किन्तु अति-निर्धन देशों में (जहाँ प्राथमिक क्षेत्रों के उत्पादों के मूल्य कम होते हैं) या घोर सूखे के उन क्षेत्रों में जहाँ नकदी फसलें बचत के रूप में नहीं होतीं आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने के लिए ये कार्यनीतियाँ उपयुक्त नहीं होतीं।

संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों की शर्तों में से एक यह होती है कि संरचनात्मक रूप से समायोजन करने वाले देश को अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करना होता है। उत्पादन की निर्यात-समर्थित तथा आयात- 'प्रतिस्थापित' विधियों की शृंखला के माध्यम से सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था। इन विधियों से देश के उत्पादों का मूल्य कम हो जाता है और वे सस्ते हो जाते हैं जिससे विदेशों में उनकी माँग बढ़ जाती है। यहाँ जिस तथ्य को जोर देकर स्पष्ट करना आवश्यक है वह यह है कि संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों का तर्क अफ्रीका के आर्थिक यथार्थों के संदर्भ में असफल हो जाता है। व्यापार के उदारीकरण की नीतियों के एक दशक से भी अधिक समय के बाद भी, अफ्रीकी राज्यों में ऐसे अनुभवहीन उद्योगों या उद्योगहीनता के कारण, जिन्हें विदेशों में पूँजी की आवश्यकता होती है, मुद्रा अवमूल्यन के कारण, आयातित पूँजी तथा सेवाएँ महंगी हो गईं। इससे उत्पादन की लागत में वृद्धि हुई और उसका भार उपभोक्ता को झेलना पड़ा, सामान बहुत ऊँचें मूल्यों पर खरीदना पड़ा। इस अवमूल्यन का अंतिम परिणाम यह होता है कि मुद्रा-स्फीति में वृद्धि होती है जिससे लोगों की क्रय-शक्ति और भी कम हो जाती है।

इसी प्रकार अधिकतर अफ्रीकी देशों में कृषि-क्षेत्र अभी तक प्रारंभिक अवस्था में है। कृषि संबंधी लगभग 86 प्रतिशत कार्य पारम्परिक उपकरणों से किए जाते हैं और कृषि कार्य सामान्यतः यहाँ मौसम की कृपा पर ही अधिक निर्भर होते हैं। अतः भले ही माँग बढ़ जाए, किसानों को उसका कोई लाभ नहीं मिल पाता। एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि नकदी फसलों (कोकोआ तथा ताड़-खजूर आदि) के पककर तैयार होने में काफी समय लगता है। परिणामस्वरूप उनकी बढ़ी हुई माँग की पूर्ति संभव नहीं हो पाती।

प्रसिद्ध अफ्रीकी अर्थशास्त्री अडेबायो अडेडेजी (Adebayo Adedeji) ने ठीक ही कहा है:

> "आर्थिक सुधार लाना तो दूर रहा, इन संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों ने विकास की उस गति को भी भारी क्षति पहुँचाई है जिस पर उपनिवेशवाद के पश्चात् वाली अनिश्चित राजनीतिक संरचनाओं के स्थिरीकरण की सदैव सर्वश्रेष्ठ आशा की जाती थी।"

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों ने औद्योगिक क्षमता में भले ही थोड़ी-बहुत वृद्धि की हो किन्तु उनके कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में समान रूप से लोगों के जीवन-स्तर में गिरावट, उनकी आय के स्तरों में भारी असमानता तथा सीमित संसाधनों में उत्कट प्रतियोगिता का समावेश हुआ है। यद्यपि उदारीकरण के कारण भ्रष्ट आचरणों पर कुछ रुकावटें लगी हैं किन्तु उसके साथ सार्वजनिक संसाधनों को निजी उपयोग में लाने की नई एवं उपयुक्त विधियाँ भी जुड़ी हैं।

5.8 शासन और विकास

अफ्रीका की बहुसंख्यक सरकारें अपनी जनता को गृहयुद्धों, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों, राजनीतिक अस्थिरता और कानूनी शासन भंग होने जैसी विषमताओं से सुरक्षा प्रदान करने में सर्वथा असफल रहीं। जहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति से लोगों के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन की आशा की गई थी वहीं स्वतंत्रता संग्रामों का नेतृत्व करने वालों की कार्य-सूचियाँ ही कुछ और हो गई थीं। उन्होंने तेज़ी से शक्ति-संरचना में यूरोपीयों के स्थान ग्रहण कर लिए। अतः औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के तुरन्त बाद जनता अपने ही नेताओं की कैद में फँस गई जिन्होंने उनकी उपेक्षा करके केवल निजी स्वार्थों के लिए उनका उपयोग करने के जोड़-तोड़ लगाए। (ज़ायरे में मोबुतु, नाइजीरिया में नामदी अज़ी किवे (Nnamdi Azi Kiwe), मालावीर में बाण्डा, इथियोपिया में हेले सेलासी (Haile Selassie), और इसी प्रकार यह सूची चलती रह सकती है।) इस सबके कारण अफ्रीका की और भी दुर्गति हुई। अफ्रीकी राजनीति तब से, "राज्य के अधिकारियों को नियंत्रित एवं शोषित करने के संघर्ष" में बदल गई है और उसी रूप में चली जा रही है। इस अंधी दौड़ में सेना भी पीछे नहीं रही; अनेक राष्ट्रीय सरकारें बैरकों में पहुँच गईं और दशकों तक खूनी सैनिक विद्रोह (तख्ता पलट) होते रहे। पश्चिमी शक्तियों द्वारा दबाव डालने के प्रयासों के कारण आन्तरिक विरोध को प्रोत्साहन मिला जिसके द्वारा सदैव सैनिक, एकदलीय, एक समुदाय नीति अथवा व्यक्तिपरक शासन को अत्यंत सशक्त, दृढ़, संगठित एवं सक्रिय प्रतिरोध मिलता रहा। इसके साथ-साथ, दानी देशों एवं अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठनों ने प्राप्तकर्त्ता देश के मानवाधिकार तथा शासन के जनतंत्रीय रूपों के प्रगति संबंधी विवरणों के आधार पर विकास हेतु सहायता राशि प्रदान करना प्रारंभ कर दिया। अफ्रीकी देशों में राजनीतिक जनतंत्रीकरण संबंधी पर्याप्त प्रगति के बावजूद, नए शासनों के स्थायित्व के संबंध में अनिश्चितता बनी रहती है क्योंकि बहु-दलीय राजनीति के कारण जातीय तनाव एवं संघर्षों को बढ़ावा मिलता है। इस संबंध में भी पर्याप्त तर्क दिए जाते हैं कि लोकतंत्र की निरंतरता के लिए व्यापक मध्यम वर्ग, स्वतंत्र जनसंचार माध्यम, बुद्धिजीवी वर्ग तथा मूलभूत औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रतिष्ठान सहायक होते हैं। इन परिमापों पर अफ्रीका खरा नहीं उतरता।

1970 एवं 1980 के दशकों में विश्व के राजनीतिक संदर्भ बदल गए। संसार-भर में लोकतंत्र के पक्ष में व्यापक समर्थन जुट गया। इस प्रक्रिया का प्रारंभ लैटिन अमेरिकी सैनिक शासनों के लोकतांत्रिक शासनों में परिवर्तन के साथ हुआ जिसका अनुसरण एशिया के देशों (दक्षिण कोरिया, ताईवान, चीन, बांग्लादेश, पाकिस्तान, कंपूचिया आदि के सैनिक शासनों या एकदलीय शासनों के लोकतंत्रीकरण के रूप) में हुआ। सोवियत संघ सहित मध्य और पूर्वी यूरोप में साम्यवादी शासनों के अंत तथा उनके स्थान पर बहुदलीय प्रतियोगिता वाली निर्वाचित सरकारों की स्थापना के रूप में अति-महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस भूमण्डलीय (वैश्विक) प्रवृत्ति का दबाव अफ्रीका पर भी पड़ा। अफ्रीका की राजनीतिक स्थिति भी बहुत से साधनों के दबाव में आ गई। यह समझना पर्याप्त है कि चाहे नागरिक शासन रहा या सैनिक शासन, उसकी उत्तरजीविता (टिकाऊपन) ने विकास सहित अन्य सभी विषयों पर वरीयता प्राप्त की थी। मुश्किल से ही विकास की कोई कार्यनीति ठीक से चल रही थी। अफ्रीकी सरकारों को लोग "शत्रु बलों के रूप में देखते थे जिनकी टालमटोल, प्रवंचना तथा उनके काम में अड़चन डालने के अवसर का सभी को अधिकार मिल गया था।" इसका परिणाम अभूतपूर्व भ्रष्टाचार तथा सामाजिक आघात के रूप में निकला। 1980 के दशक के प्रारंभ में केवल बोत्सवाना, सेनेगल, मॉरिशस एवं ज़िम्बाब्वे में ही लोकतंत्र था। गत दो दशकों में बहुदलीय राजनीति का व्यवहार अनेक राष्ट्रों में होने लगा है जिनमें इथियोपिया, मोज़ाम्बीक, अंगोला (सभी मार्क्सवादी-लेनिनवादी राज्य),

घाना, मलावी, कीनिया, तंज़ानिया (सभी तानाशाही या एक-दलीय शासन) प्रमुख हैं। दक्षिण अफ्रीका में रंग-भेद की नीति का अंत अफ्रीकी इतिहास की महानतम घटना है।

दूसरी ओर सियरा लोने, नाइजीरिया तथा कांगो जैसे देशों में कुछ गतिरोध तथा विपरीत स्थितियाँ भी देखने को मिलीं। संसार के अन्य विकासशील भागों की भाँति अफ्रीका में भी निरंतर चलते हुए आर्थिक संकट के फलस्वरूप ही लोकतंत्र के प्रति रूझान बढ़ा था। अफ्रीका में लोकतांत्रिक सरकारों की स्थापना के प्रमुख कारण थे - पूर्ववर्ती राजनीतिक प्रणालियों की जातीय और धार्मिक समस्याएँ हल करने में असफलता, सख्त दमनात्मक कार्रवाई, मानवाधिकारों का संपूर्ण रूप से उल्लंघन, पश्चिमी शक्तियों की ओर से सामाजिक एवं राजनीतिक दबाव, शीत युद्ध का अंत तथा दीर्घकालीन (टिकाउ) आर्थिक संकट। इसमें संदेह नहीं कि अफ्रीकी देश घोर विपरीत आर्थिक परिस्थितियों में लोकतांत्रिक व्यवस्था के दौर में प्रवेश कर रहे हैं।

5.9 भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण) और विकास

यद्यपि "भूमण्डलीकरण" पद का प्रयोग बहुत अधिक किया जा रहा है किन्तु इस पद के अभिप्राय के विषय में मतैक्य नहीं है। यहाँ अफ्रीका के संबंध में इस पद पर विचार करते हुए इसके दो आयाम कहे जा सकते हैं - पहले के अनुसार वह एक शक्तिशाली वाहन है जो आर्थिक समृद्धि को प्रोत्साहित करता है; प्रौद्योगिकी का प्रसार करता है तथा विकसित एवं विकासशील, दोनों प्रकार के देशों में लोगों के जीवन-स्तर के सुधार में योगदान करता है। दूसरे आयाम के अनुसार यह राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता, स्थानीय संस्कृति एवं परंपराओं पर "प्रहार" करता है और आर्थिक एवं सामाजिक स्थायित्व के लिए खतरा पैदा करता है। यह जान लेना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप जो संस्थाएँ उभरी हैं उनका प्रसार राष्ट्र-राज्य की शक्ति एवं इसके अधिकार का अतिक्रमण करते हुए होता है। गैर-सरकारी संगठन, पर्यावरण संबंधी प्रणाली, पार-बहुराष्ट्रीय संगठन, जातीय समुदाय एवं बहु-क्षेत्रीय संगठन आदि भूमण्डलीय जगत के महत्वपूर्ण अवयव हैं। भूमण्डलीकरण के द्वि-आयामी पक्ष का ही परिणाम है कि अवसर तथा गतिहीनता; एवं अव्यवस्था दोनों ही समान रूप से प्रभावित कर सकते हैं। हर परिणाम आन्तरिक बलों तथा बाहरी परिस्थितियों के पारस्परिक संबंधों पर ही निर्भर होता है।

यद्यपि जैसे-जैसे अफ्रीका में लोकतंत्र अपनी जड़ें जमाता जा रहा है तथा जीवन के राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में व्यवस्था-सी दिखाई पड़ने लगी है, पूर्णतः एकीकृत विश्व-अर्थव्यवस्था का लक्ष्य दूर होता जा रहा है। व्यापार के उदारीकरण और पूँजी, तकनीकी तथा दक्षताओं की अधिक गतिशीलता जैसे उत्साहवर्धक संकेतों के बावजूद पूँजी, प्रौद्योगिकी और दक्षताओं के प्रवेश में राष्ट्रीय परिवेश की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है और इन्हीं सब पक्षों में बहुसंख्यक अफ्रीकी देश पीछे हैं। कमज़ोर अवसंरचना तथा प्रबंधन, प्रौद्योगिकी एवं उद्यम संबंधी दक्षताओं का अभाव, उत्पादन के महत्वपूर्ण केन्द्रों के रूप में उनके उभरने में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। राजनीतिक अस्थिरता एवं आर्थिक कुप्रबंधन से ग्रस्त देशों में भूमण्डलीकरण पूँजी और दक्षताओं की सहायता पहुँचाकर उनके संकटों का शमन कर सकता है। जो भी हो नाइजीरिया, कैमरून, कीनिया, ज़िम्बाब्वे और दक्षिण अफ्रीका जैसे देश आर्थिक उदारीकरण एवं एकीकरण से पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था में एकीकरण प्राथमिक उत्पाद के व्यापार पर आधारित नहीं हो सकता। अफ्रीका की खनिज संपदा के क्षेत्र में प्राथमिक उत्पादों के अन्य अनेक विकल्प विद्यमान हैं। फल,

सब्जी एवं फूल जैसे अपारंपरिक कृषि उत्पाद कुछ देशों को रोज़गार के गत्यात्मक साधन एवं विदेशी मुद्रा कमाने के अवसर प्रदान कर सकते हैं। कृषि एवं खनिज उत्पादों को संसाधित करके और उन्हीं पर आधारित विनिर्माण इकाइयाँ लगाकर विकास की उज्ज्वल संभावनाएँ खोजी जा सकती हैं।

राजनीतिक पुनरुद्धार तथा आर्थिक-सामाजिक पुनरुत्थान के लिए कुछ आशाप्रद संकेत हैं। अफ्रीकी सरकारें जनता की आवाज़ को सुनने लगी हैं और उन देशों में, जो अभी तक सत्तावादी (निरंकुश) शासनों के अंतर्गत थे, असहमति के लिए भी सम्मान की भावना जाग्रत हो रही है। 1970 और 1980 के दशक में जो व्यावसायिक मध्यम वर्ग लुप्त प्रायः हो चुका था आज पुनर्गठित हो रहा है। इसके साथ-साथ लोगों के जीवन-स्तर में सुधार की आवश्यकता भी है। 1960 और 1970 के दशक में कुछ अफ्रीकी देशों में शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, शिशु मृत्यु-दर एवं कुपोषण में कमी तथा बढ़ती हुई जीवनावधि के रूप में पर्याप्त प्रगति दिखाई पड़ी थी। किन्तु 1980 के दशक में विकास-सूचक इन सभी क्षेत्रों में अवनति दिखाई पड़ने लगी।

उप-सहाराई अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीका की अपेक्षा सभी सामाजिक संकेतकों के स्तर पर उच्चतर साक्षरता, अपेक्षाकृत कम बाल–कुपोषण तथा अल्पतर लिंग-असमानताएँ हैं। गत 25 वर्षों में अधिकतर अफ्रीकी देशों में जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर ऐसी एकमात्र स्थिति है जो अन्य विकासशील क्षेत्रों में से किसी में नहीं पाई जाती। आगामी दशकों में अनुमानित जनसंख्या वृद्धि की उच्च दरें और आर्थिक समृद्धि, मानवीय विकास एवं पर्यावरण-संरक्षण पर उनके प्रभाव ऐसी कठिनतम चुनौतियाँ हैं जिनका सामना अफ्रीका को करना होगा।

5.10 पर्यावरण और विकास

अफ्रीका बड़ा तथा विविधताओं से भरा हुआ महाद्वीप है जिसमें अत्यधिक भिन्नताओं वाली स्थलाकृति है और अधिकतम प्रमुख पारिस्थितिक तंत्र हैं। इनमें विश्व का सबसे बड़ा मरुस्थल एवं अर्द्ध-बंजर क्षेत्र, सबसे लंबा वर्षा-पोषित वन, ठंडे पर्वतीय प्रदेश, आर्द्र तटीय क्षेत्र, सवाना, विस्तीर्ण नदी-घाटियाँ एवं दलदलीय क्षेत्र शामिल हैं। यहाँ विविध प्रकार की मिट्टी है और वर्षा के परिमाण भी भिन्न-भिन्न हैं। हजारों वर्षों से भयंकर बाढ़ों और घोर सूखा के प्रकोप यहाँ होते रहे हैं। विषुवत् रेखीय पट्टी में भारी वर्षा होती है जबकि उत्तरी भाग, दक्षिणी भाग तथा अफ्रीका के हॉर्न के देश बंजर या अर्द्ध-बंजर हैं। अफ्रीका के सभी भागों, यहाँ तक कि भारी वर्षा वाले भागों में भी, जलवायु-परिवर्तन होते रहते हैं (तापमान में मौसमी एवं वार्षिक परिवर्तन तथा विभिन्न क्षेत्रों एवं देशों में वर्षा के विभिन्न स्तर होते हैं)। पूर्वी, मध्य और दक्षिणी अफ्रीका के अधिकतर भागों तथा पूर्व में हिन्द महासागरीय द्वीपों में ई. एन. एस. ओ. (El Nino Southern Oscillation) प्रक्रिया काम करती हैं। सन् 1900 से 1980 तक के वर्षा के आँकड़े यह दर्शाते हैं कि सन् 1968 से अफ्रीका में औसत वार्षिक वर्षा कम हुई है और अपेक्षा से कहीं नीचे के स्तर पर घटती-बढ़ती रही है। गत दो दशकों में 1970 और 1980 के दशक की अपेक्षा वर्षा में किसी दीर्घकालीन (टिकाउ) सुधार के संकेत नहीं मिले हैं। परिणामस्वरूप 1992-93 में अफ्रीका के दक्षिणी भाग को भयंकर सूखे का सामना करना पड़ा था। उस सूखे से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले देश बोत्सवाना, बुर्किना फ़ासो, चाड, इथियोपिया, कीनिया, मॉरिटैनिया तथा मोज़ाम्बीक थे।

अफ्रीका में पर्यावरणीय अधोनति का इतिहास

उन्नीसवीं तथा प्रारंभिक बीसवीं शताब्दी में अफ्रीका में औपनिवेशिक शासन की स्थापना के कारण पर्यावरण-संतुलन के लिए घोर विनाशकारी परिणाम क्रमबद्ध रूप में सामने आए।

चरागाहों और खेतों के विस्तृत क्षेत्रों को या तो यूरोपीयों के निवास स्थलों (जैसे पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीकी देशों में) अथवा बग़ीचों (जैसे पश्चिमी तथा मध्य अफ्रीकी देशों में) के लिए घेर लिया गया। इसके साथ-साथ विभिन्न यूरोपीय शक्तियों द्वारा अधिकृत उपनिवेशों की हदबंदी की गई। परिणामस्वरूप लंबे समय से स्थापित परिवर्तित फसलों वाली खेती तथा घुमंतू जनजातियों और ग्रामीणों की जीवन-प्रणालियों में गड़बड़ी आ गई। देशी जनता को कम कृषि-उत्पादन वाले क्षेत्रों में सिमट कर रह जाना पड़ा। यूरोपीयों के खेतों, बगीचों और खानों में बलपूर्वक लोगों को मज़दूर बनाकर ले जाया गया। फलस्वरूप लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना पड़ा जिसके परिणाम विनाशकारी रहे। अनेक क्षेत्रों में अफ्रीकी समाज की जो व्यवस्था भंग हुई, उसके कारण पर्यावरण-अधोगति की नींव पड़ी। इसके साथ ही वनों, पर्वतों, जलीय भंडारों, चरागाहों और कृषि भूमि पर राज्य के नियंत्रण के कारण स्थानीय जन-समुदाय अपने नैसर्गिक अधिकारों से वंचित हो गया। उदाहरण के लिए, 1930 के दशक में फ्रांसीसियों ने सर्वसामान्य भूमि को अधिगृहीत कर लिया और वहाँ एक वानिकी संहिता स्थापित कर दी। यही प्रक्रिया औपनिवेशक शासन से स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी चलती रही। यद्यपि जनसामान्य के प्रबंधन का औपचारिक दायित्व राज्य का ही था, किंतु वह किसी प्रकार का प्रभावी नियंत्रण रख नहीं सका। संसाधन-संरक्षण पर इसका निकृष्टतम प्रभाव पड़ा। संसाधन-प्रबंधन की पारम्परिक प्रणालियाँ नष्ट कर दी गई थीं और उनके स्थान पर कोई विकल्प खोजा नहीं गया था।

कृषि का वाणिज्यीकरण पर्यावरण-दबाव का एक अतिरिक्त साधन बना। चक्रीय फसलों, बीच की फसलों, मिश्रित खेती तथा स्थानान्तरी जुताई जैसी पारंपरिक पद्धतियों पर या तो रोक लगा दी गई या उनका परित्याग कर दिया गया। जहाँ चाय, कहवा एवं कोकोआ जैसे वृक्षों की फसलों का मिट्टी के संरक्षण पर लाभकारी प्रभाव हुआ वहीं कपास एवं मूँगफली जैसी फसलों से उर्वरता में कमी आई और मिट्टी के क्षरण में वृद्धि हुई।

विकास की नीतियाँ और कार्यक्रम

जैसा सभी विकासशील देशों में हुआ है उसी प्रकार औपनिवेशिक तथा उत्तर-औपनिवेशिक, दोनों ही युगों की शासकीय नीतियों ने पर्यावरण-अधोगति में वृद्धि ही की। विश्व बैंक की वित्तीय सहायता से प्रारंभ की गई बृहत् विकास परियोजनाओं की रूपरेखा तैयार करते समय पर्यावरण एवं समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का ध्यान नहीं रखा गया था। इसमें बाँध-निर्माण (जैसे, सूडान के श्वेत नील प्रान्त (White Nile Province) में जाबेल अल-ऑलिया (Jabel el-Awliya)), सिंचाई की सुविधाओं का निर्माण (जैसे, कीनिया में ताना नदी पर बुरा और इथियोपिया में नदी घाटी विकास परियोजनाएँ) तथा तंज़ानिया में बड़े पैमाने पर बनाई गई आवास परियोजनाओं आदि के नाम लिए जा सकते हैं। ऐसी परियोजनाओं के कारण संसाधन अधोगति, सीमित भूमि पर बढ़ी हुई जनसंख्या का दबाव तथा जलीय प्रवाह के स्तर एवं उसकी दिशा में परिवर्तन आदि में वृद्धि हुई।

अफ्रीका अपने वन्य जीवन से विशेष रूप से संबद्ध है जिनमें बड़े स्तनपायी जीव प्रमुख हैं। अनुमान किया जाता है कि उनमें से 65 प्रतिशत जीव अपने प्राकृतिक आवासों के लुप्त हो जाने तथा अंधाधुंध शिकार की बलि चढ़ जाने के कारण समाप्त हो गए। अफ्रीका के वन्य जीवन-संसाधन वहाँ फलने-

फूलने वाले पर्यटन व्यापार के आधार हैं। यह व्यापार एक ओर इन जीवों के संरक्षण के लिए आर्थिक प्रोत्साहन प्रदान करता है तो दूसरी ओर उनके आवास स्थलों पर अतिरिक्त दबाव भी डालता है। इसी संघर्ष ने स्थानीय लोगों की भागीदारी के आधार पर वन्य-जीवन प्रबंधन की नई विधियों को प्रारंभ कराया है। विक्टोरिया झील की तटीय नम भूमि, कांगो के दलदल तथा अनेक बड़ी नदियों के डेल्टा विविध प्रकार की वनस्पतियों और जंतु-जीवन के आवास हैं। इनमें अनेक जीव विलोपन के कगार पर खड़े हैं।

कांगो घाटी के विस्तृत उष्णकटिबंधीय वनों की सघनतम जैव विविधता के आर्थिक एवं पर्यावरणीय महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अफ्रीका के इस क्षेत्र में शहरीकरण सबसे अधिक हुआ है किन्तु यहाँ का जनसंख्या-घनत्व न्यूनतम है। इन वनों को सबसे बड़ा खतरा इमारती लकड़ी के दोहन तथा खनिज संभाव्यता के विकास से हो सकता है।

5.11 दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास की ओर

वस्तुतः अफ्रीका के विकास का हर पक्ष पर्यावरण-संबद्ध है। अफ्रीकी देशों की अपने प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता इस बात की ओर ध्यान दिलाती है कि इन देशों के भावी विकास के लिए इन संसाधनों का संरक्षण एवं उत्तरदायित्वपूर्ण उपयोग अनिवार्य है। दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास का अभिप्राय यही है। यद्यपि पूर्णतः विश्वसनीय आँकड़े देना मुश्किल है किन्तु उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि अफ्रीका की आर्थिक समृद्धि उन योजनाओं के आधार पर है जिन्हें दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास से सम्बद्ध नहीं कहा जा सकता। स्थिति वहाँ और भी गंभीर है जहाँ पुनर्नवीकरण योग्य संसाधनों का तेजी से विनाश किया जा रहा है।

आर्थिक रूप से भी अप्रतिपालित विकास-कार्यनीतियाँ भविष्य में हानिकारक रहती हैं। अफ्रीका के व्यापार को आधार प्रदान करने वाली अधिकांश वस्तुएँ मूल्य की दृष्टि से भारी प्रतियोगिता वाले अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में ठहर नहीं पातीं। आने वाले समय में अन्तर्राष्ट्रीय मानव समुदाय के समक्ष उपस्थित होने वाली चुनौतियों में प्रमुख यह होगी कि ऐसी आर्थिक प्रणाली में संक्रमण किया जाए जिसमें उत्पादों, विशेषकर पुनर्नवीकरण योग्य उत्पादों की पर्यावरणीय एवं सामाजिक लागतें उनके मूल्यों में सम्मिलित हैं।

अफ्रीकी राष्ट्रों में अब भी अपने उत्पादों को संसाधित एवं उच्च कोटि का बनाकर मूल्य-वृद्धि करने की क्षमता नहीं है। इसके लिए तकनीकी तथा विपणन संबंधी दक्षताओं की आवश्यकता होती है जिसका अफ्रीका में अभाव है। अप्रतिपालित ढंग से अपने पुनर्नवीकरण योग्य संसाधनों का विकास करके वे न केवल अपने 'विकास के भविष्य' को बेच दे रहे हैं वरन् भारी हानि भी उठा रहे हैं। प्राकृतिक एवं विनिर्मित, दोनों प्रकार के उत्पादों के मूल्यों के अन्तर्राष्ट्रीयकरण द्वारा इस प्रक्रिया को उल्टा किया जा सकता है। सिद्धान्त रूप से इसे सरकारी नीति बना दिया जाना चाहिए। दुर्भाग्य से अभी तो यह दूर का स्वप्न ही लगता है।

जहाँ कुछ नीतियों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आर्थिक सहायता (सब्सिडी) अल्पकालीन उपकरण के रूप में उपयोगी हो सकती है वहीं एशिया और अफ्रीका के अधिकतर विकासशील देशों में इसका प्रभाव उल्टा ही देखा गया है। पृथ्वी परिषद (Earth Council) ने हाल ही के एक अध्ययन द्वारा संकेत दिया है कि अधिकतर विकासशील देशों की सरकारें प्रतिं वर्ष आर्थिक-सहायता के रूप में जिन चार क्षेत्रों में अरबों डॉलर की राशि को खर्च करती हैं वे हैं - कृषि, परिवहन, ऊर्जा तथा जल। ये सभी

उत्कट रूप से अप्रतिपालित क्षेत्र हैं और इनमें दी गई आर्थिक-सहायता संपूर्ण जनसंख्या में से उच्च आय वाले एक छोटे से वर्ग को ही लाभ पहुँचाती है। कभी-कभी आर्थिक-सहायता की यह राशि, अफ्रीका को प्राप्त होने वाली संपूर्ण आधिकारिक विकास सहायता राशि (Official Development Assistance - ODA) से भी अधिक होती है। आधिकारिक विकास सहायता राशि (ODA) द्वारा सहायता-प्राप्त अवसंरचना परियोजनाओं ने प्रतिपालन की दिशा में होने वाली प्रगति को खोखला किया है और विरल संसाधनों के दुरुपयोग को बढ़ावा दिया है। हाल ही के एक अध्ययन से पता चला है कि अफ्रीका में सड़क-निर्माण कार्य में निवेशित 150 अरब (बिलियन) डॉलर राशि का लगभग एक-तिहाई भाग कुप्रबंधन तथा अपर्याप्त रख-रखाव के कारण बर्बाद हो गया। इसके कारण न केवल उन क्षेत्रों में आर्थिक विकास अवरुद्ध हुआ है जो सड़कों पर निर्भर थे वरन् भावी संसाधनों पर अतिरिक्त बोझ भी बढ़ा है। इसी अध्ययन से यह अनुमान भी लगाया गया है कि केवल आर्थिक रूप से व्यवहार्य सड़कों को ठीक करने के लिए दस वर्ष तक 1.5 अरब (बिलियन) डॉलर के वार्षिक खर्च की आवश्यकता पड़ेगी।

दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास केवल सरकार पर सारा दायित्व डाल देने से नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसके लिए जनता की भी पूर्ण प्रतिबद्धता चाहिए। रियो शिखर सम्मेलन की 'कार्य सूची 21' इस संबंध में मार्गदर्शी सिद्धान्तों को स्पष्ट करती है। अकेली सरकारें इस कार्य को नहीं कर सकतीं। सौभाग्यवश, आज के भूमण्डलीय संसार में उन्हें (सरकारों को) ऐसा करना भी नहीं है। जनता अपनी सरकारों से आगे चल रही है। संसार के अन्य भागों की भाँति ही, अफ्रीकी देशों में भी चमत्कारिक ढंग से ऐसे निष्ठावान ग़ैर-सरकारी संगठनों और नागरिक समुदायों की वृद्धि हुई है जो दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास के विविध पक्षों के दोनों स्तरों अर्थात् नीति-निर्माण तथा क्रियान्वयन के प्रति प्रतिबद्ध हैं। अफ्रीका में दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास का व्यवहार विदेशी नहीं है। यह पारंपरिक संस्कृतियों एवं वाणिज्यिक व्यवहारों में अंतर्निहित है जिसके कारण अफ्रीकी समाज शताब्दियों से जीवित रहे और फले-फूले हैं।

निश्चित रूप से यह स्पष्ट है कि विकास की नई प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में अफ्रीका अपनी जनता की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति में समर्थ नहीं होगा। दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास आज की आवश्यकता है; मात्र विकल्प नहीं। इसमें जितनी देरी की जाएगी इसकी उपलब्धि उतनी की कठिन होती जाएगी।

5.12 सारांश

इस इकाई में हमने विकास के अर्थ को, विशेषकर अफ्रीका के संदर्भ में समझने की चेष्टा की है। जहाँ विकास की परिभाषा, 'लोगों के जीवन-स्तर में सुधार' के रूप में दी गई है यह भी व्यापक रूप से माना जाता है कि विकास दीर्घकालीन (टिकाऊ) होना चाहिए। विकास विभिन्न स्तरों पर हो सकता है, फिर वह स्तर चाहे राजनीतिक हों, आर्थिक हों या सामाजिक हों। अफ्रीका में विकास के वर्तमान संकट सन् 1445 के दास व्यापार की उस प्रथा से प्रारंभ हुए माने जा सकते हैं जिनका सीधा-सीधा प्रभाव महाद्वीप के श्रम-बल पर पड़ा था और जो अफ्रीकी अर्थव्यवस्था में एक भारी क्षति थी। उपनिवेशीकरण का अर्थ था, अफ्रीका में चलने वाली लूट-पाट की निरंतरता। 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में उभरी गतिहीनता, अवनति और सूखे की स्थिति ने दशा और भी बिगाड़ दी। साथ-साथ ऋण के बढ़ते हुए बोझ और नकदी की फसलों के समावेश ने अफ्रीका को पश्चिम पर अधिक से अधिक निर्भर बना

दिया। परिणामस्वरूप पश्चिम के शासनादेश द्वारा संरचनात्मक समायोजन नीतियाँ अफ्रीका पर आरोपित कर दी गईं। अतः अफ्रीका मुद्रा-अवमूल्यन, मुद्रा-स्फीति, क्रय शक्ति में कमी, आय स्तरों में असमानताएँ और जीवन-स्तर में गिरावट जैसे अभिशापों का शिकार हो गया। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से भी अफ्रीका को लाभ नहीं हुआ। यद्यपि कुछ देशों - कीनिया, ज़िम्बाब्वे और दक्षिण अफ्रीका - ने आर्थिक उदारीकरण से काफी लाभ उठाए किन्तु गरीबी और भुखमरी चलती ही रही। औपनिवेशिक तथा उत्तर-औपनिवेशिक नीतियों के कारण पर्यावरण-अधोगति में वृद्धि हुई। आज आर्थिक प्रणाली में ऐसे संक्रमण की आवश्यकता है जिसमें पर्यावरण तथा समाज-सापेक्ष लागतों को उत्पादों के मूल्य में समाविष्ट किया जा सके।

5.13 अभ्यास प्रश्न

1. 'विकास' से आप क्या समझते हैं? विकास की अवधारणा का अफ्रीकी अनुभव से संबंध स्पष्ट कीजिए।

2. 1950 के दशक से अफ्रीका में विकास के मार्ग में आई प्रमुख समस्याओं पर संक्षेप में विचार प्रकट कीजिए।

3. अफ्रीका के आर्थिक विकास में भूमण्डलीकरण का क्या प्रभाव रहा है?

4. अफ्रीका में दीर्घकालीन (टिकाऊ) विकास की क्या संभावनाएँ हैं?